International Research Journal of Human Resources and Social Sciences
ISSN(O): (2349-4085) ISSN(P): (2394-4218)
Impact Factor- 5.414, Volume 4, Issue 11, November 2017
Website- www.aarf.asia, Email : editor@aarf.asia , editoraarf@gmail.com

राजस्थानी लोकनाट्यों के प्रकार

डॉ. सरस्वती चतुर्वेदी
असीसटैंट प्रोफेसर, संगीत विभाग,
चौधरी देवीलाल विश्वविद्यालय, सिरसा

राजस्थानी लोकनाट्यों की परम्परा बड़ी ही प्राचीन तथा लोकप्रिय रही है। इन लोकनाट्यों के जितने प्रकार हमें राजस्थान में दिखाई देते हैं, उतने भारत के किसी भी राज्य में दिखाई नहीं देते। इन लोकनाट्यों की आपस में समानता होने के साथ–साथ कई विभिन्नताएं भी देखने में आती है। ये सभी लोकनाट्य ग्राम्य वातावरण में अंकुरित एंव विकसित होने पर भी आडम्बरहीन हैं।[1] इन सभी लोकनाट्यों का आयोजन विशेष रूप से ख्याल, लीला, स्वांग आदि रूप में खुले मैदान में आयोजित किया जाता है। इससे अभिनय करने वाले पात्रों तथा दर्शकों का आपस में सामंजस्य बना रहता है।[2]

राजस्थान के लोकनाट्यों की संस्कृति बड़ी ही प्राचीन तथा जीवन्त रूप में दिखाई देती हे। इन लोकनाट्यों में व्यक्ति अपनी सभी प्रकार की सामाजिक एवं सामुदायिक भावनाओं को अभिनय द्वारा अभिव्यक्त कर सकता है। इन्हीं अभिव्यक्तियों के कारण राजस्थान में यह लोकनाट्य परम्परा ख्याल, रम्मत, तामाशा, नौंटकी, लीला, भवाई, गवरी, फड़ इत्यादि के रूप में विकसित हुई और यहां के जनसमुदाय के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान बनाया।

कठपुतली नाट्य के सम्बन्ध में बहुत से विद्वानों को मानना है कि भारतीय नाटक का उद्‌गम तथा विकास कठपुतली नाटक से हुआ। पुतली रंगमंच भारतवर्ष का आदि रंगमंच माना जाता है। कठपुतली कला भी हमारे देश में नाटक की तरह ही पुरानी है और दोनों का एक–दूसरे के साथ बड़ा ही गहरा सम्बन्ध है। ये पुतली के खेल गांव–नगर और धनिक–गरीब के सामने या राज दरबार तथा धार्मिक स्थलों पर समान रूप से प्रदर्शित होते थे और आज भी होते हैं। अन्तर केवल इतना है कि कठपुतली नाट्य विशिष्ट हस्त की कला होने के कारण अपने सामाजिक और सामुदायिक स्वरूप में कभी सामने नहीं आई। लकड़ी की पुतलियों और चमड़े की पुतलियों का प्रयोग अलग–अलग होते हुए भी सिद्धान्त की दृष्टि में गांव–गांव, नगर–नगर घूमकर अनन्तकाल से भारतीय जनता का मनोरंजन करते रहे हैं तथा विशाल रंगमंचीय आयोजनों के अभाव की पूर्ति करते रहे हैं।[3]

© Associated Asia Research Foundation (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

कठपुतली

हमारे देश में प्रायः कठपुतलियों को मानव की तरह प्रस्तुत किया जाता रहा है। अनादिकाल से छोटे बच्चे गुड्डे–गुड़ियों को मानव के रूपों में प्रस्तुत कर क्रीड़ा करते आये हैं। बच्चों द्वारा गुड्डे–गुड़ियों की शादी करना भारतवर्ष में विशेष खेल रहा है। बच्चे इन्हीं खेल–खिलौनों द्वारा कई प्रकार की परिस्थितियों को नाटकीय रूप देकर अपना मन बहलाव करते हैं, इन खेलों में बड़े–बड़े युद्ध होते हैं, और स्वयंवरों को रचा जाता है, दावतें होती हैं तथा गृहस्थ जीवन की कई सारी झांकियां अत्यन्त नाटकीय रूप में प्रस्तुत की जाती हैं। बच्चों के खेलों में ही नहीं व्यस्कों के समारोहों में भी, जैसे दशहरा आदि में रावण की मूर्ति के सामने धनुष बाण छोड़ने का उपक्रम किया जाता है। रावण की मूर्ति को आग लगाई जाती है। इस प्रकार की लीलाओं को देखकर अपने पुराने समय की यादों को ताजा करता है।[4]

'बौल चढ़े शिव जी मिले, पूरण हो सब काम।
खेल कठपुतली का करो, लेकर हरि का नाम।।''

इस प्रकार पुतली उद्भव सम्बन्धी कथन की पुष्टि होती है। साथ ही मोहन जोदड़ों एंव हड़प्पा की खुदाई से प्राप्त खिलौनों का यदि सूक्ष्म अध्ययन किया जाए तो यह बात सिद्ध हो जाती है कि उस समय की सभ्यता व संस्कृति में भी पुतलियों का प्रचलन रहा होगा, क्योंकि खुदाई से प्राप्त खिलौनों के विभिन्न अंगों में छिद्र पाये गए हैं। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इन छिद्रों में डोरे या धागा डालकर संचालित किया जाता रहा होगा।

कठपुतली के एक दल में दो या तीन व्यक्ति होते हैं। इसमें औरत ढोलक बजाती है व मर्द कठपुतलियां चलाते हैं। इन दोनों के हाथ मशीन की तरह चलते हैं। कठपुतली की सीटी थापें, वाचन के साथ पैर से पैदा की हुई आवाज, मुंह तथा ढोलक की विचित्र समस्त नाटक को प्राणवान बनाती है।

ख्याल

हमारे रंगीले तथा रंगो से भरे राजस्थान के लोकानुरंजन का एक मात्र सशक्त माध्यम है– लोकनाट्य 'ख्याल'। इसकी एक समृद्ध परम्परा इस प्रदेश में विद्यमान है। ख्यालों की परम्परा लगभग 300 वर्ष पुरानी है। ख्यालों में स्थानिय रंगों के अनुरूप विभिन्नता पाई जाती है। इन ख्यालों के प्रमुख रूप हैं –कुचामणि ख्याल, शेखावाटी ख्याल, किशनगढ़ी ख्याल, अलीवक्षी ख्याल, मेवाड़ के ख्याल, मारवाड़ी ख्याल और तुर्राकलंगी ख्याल आदि। कई स्थानों पर इन लोकनाट्य शैली को रम्मतें और राधारी भी कहते हैं। वस्तुतः ख्याल का अर्थ लोक मंचों पर लोक प्रतिभाओं द्वारा अपनी परम्परागत लोक शैलियों में प्रस्तुत किये जाने वाले खेलों (खेल–तामाशों) से जुड गया है। राजस्थान की शैलियां इतनी समृद्धशााली बन गई है कि लोकनाट्य 'ख्याल' के नाम से शोर्य और प्रणय की भावनाओं से आपूरित राजस्थानी लोक संस्कृति साकार हो उठती है।

ख्यालों के प्रदर्शन हेतू खुले मैदान, चौराहे या मंदिर प्रांगण आदि स्थानों पर मंच बनाया जाता है। इन ख्यालों के मंच तुर्राकलंगी के अट्टालिकानुमा भव्य और विशाल रूप में अभी भी देखने को मिलते हैं। कुचामणी और शेखावाटी ख्यालों के मंच लकड़ी के तख्तों से बनाये जाते हैं। चारों तरफ चंदोवा तान

दिया जाता है। ख्यालों के ये खुले मंच सादगीपूर्ण लेते हैं और जो अलवर के क्षेत्र के ख्याल के प्रदर्शन के लिए किसी ऊंचे स्थान पर (या ऑटले) पर नाट्य की प्रस्तुति की जाती है और जनसमुदाय रंगस्थली के तीनों और बैठ जाते हैं। झालावाड़ और कोटा क्षेत्र के ख्यालों की मंच सज्जा बड़ी ही साधारण सादगीपूर्ण और कलात्मक ढंग से की जाती है। मंच की सज्जा के लिए जो सामान एकत्रित होता है, वह जनता द्वारा ही एकत्रित किया जाता है इन ख्यालों का प्रदर्शन रात्रि के प्रथम प्रहर से प्रारम्भ होता है और सुबह 9–10 बजे तक चलता है। इन ख्यालों में अभिनय करने वाले पात्र सर्वप्रथम मंच पर आकर देवी–देवताओं की पूरा–अर्चना करते हैं कुचामणी ख्यालों में सामुहिक रूप से मिलकर वन्दना की जाती है और बाद में चुश्त पजामा, कलीदार कुरता और तुर्की टोपे पहिने भिश्ती आता है और अपना परिचय देता है कि ''मैं भिश्ती आया अजमेर का''।[5]

तुर्राकलंगी

''तुर्राकलंगी ख्यालों का बीजारोपण तुकनगीर तथा शाहअली नामक दो संतों ने संयुक्त रूप से मिलकर किया था। दोनों संत दक्षिण के निवाासी थे। तुकनगीर गुसाई महात्मा थे। ये भगवा वस्त्र धारणा करते और शिवजी के उपासक थे। शाहअली मुसलमान फकीर थे जो हरे कपड़े पहनते थे और शाक्ति की उपासना करते थे। दोनों प्रकाण्ड पंडित, पहुंचे हुए संत, तत्वदर्शी तथा आशु लावणीबाज थे। इसलिए कभी–कभी दोनों के बीच में दंगल भी जुड़ जाते थे। ये दंगल मुख्यतया धर्म, योग, न्याय, वेदान्त तथा अध्यात्म जैसे गूढ विषयों को लेकर जुड़ते थे। विविध लावणियों में चंग पर एक पक्ष जो विषय छेड़ देता दूसरे को उसी विषय तथा लावणी में उसका जवाब देना पड़ता था। इस प्रकार शास्त्रार्थ रूप में दोनों एक दूसरे का खंडन मंडन कर अपने–अपने विषय का प्रतिपादन करते थे। एक दिन किसी मराठी राजा ने जब दोनों संतो के पांडित्य के सम्बन्ध में सुना तो उन्हें अपने दरबार में निमंत्रित किया। कई दिनों तक दोनों के बीच शास्त्रार्थ चलता रहा परन्तु हारजीत का कोई निर्णय नहीं निकला। राजा उनकी विद्वता पर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और इस उपलक्ष्य में तुकनगीर को अपने मुकुट का तुर्रा तथा शाहअली को कलंगी भेंट की। फलतः तुकनगीर के अनुयायियों ने हरे रंग के साथ कलंगी का निशान चढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार तुर्रा तथा कलंगी के दो प्रतिस्पर्धा सम्प्रदाय बने जो अखाड़ा, दल अथवा फड़ के नाम से प्रसिद्ध हुए। लावणी से प्रभावित यह परम्परा महाराष्ट्र में लावणी, मरहठी अथवा मरैठी ख्याल के रूप में प्रसिद्ध हुई।[6]

बैठक के ये ख्याल जब अपनी दंगली भूमि छोड़कर मंच पर आसीन हुए तो उन्हें माच की संज्ञा दी जाने लगी। माच ख्याल अधिकतर मालवा प्रदेश में लोकप्रिय हुए। मालवा की अपेक्षा राजस्थान में 'माच' ख्यालों का अधिक प्रचलन नहीं रहा है। यहां पर माच भी ख्यात रूप में प्रचलित रहें जो कि तुर्राकलंगी ख्याल,' के नाम से जाने जाते हैं। माच के ये ख्याल सर्वप्रथम मालवे से ही राजस्थान में प्रविष्ट हुए परन्तु यहां आकर यह माच तुर्राकलंगी ख्याल के रूप में रूढ़ बन गया।

अखाड़े

तुर्रा तथा कलंगी ख्यालों के लावणीबाजों के ये दो प्रमुख अखाड़े हैं। इसके अतिरिक्त छत्रमुकुट, तोड़ा, सेहरा, अनघड, डूंडा तथा इशक नाम अखाड़े भी प्रचलित रहे हैं। राजस्थान में चितौड़ तथा घोसंडु के अतिरिक्त निम्बाहेड़ा, बसी, बेगू, सावा, जयपुर, कुकड़ेश्वर, करौली, अजमेर, कनेरा, डगला आदि तुर्राकलंगी के प्रसिद्ध अखाड़े हैं।

तुर्रा कलगी ख्याल उर्दू, फारसी, अरबी, हिन्दी, लावणी, टोड़ी, कालंगड़ा, चंद्रायणी, कब्वाली, झड़, तिझड़ा, रेखता, घूमणी, थियेटर, त्रिपदी, दिलपंसद, पद्यावत, सिंगावलोचन, बहरे तबील नामक विभिन्न रंगतो में लिखे जाते हैं।[7]

रम्मत

राजस्थान के बीकानेर तथा जैसलमेर की और जो ख्याल अभिनीत किये जाते हैं, वे 'रम्मत' अथवा 'रामतों' के नाम से जाने जाते हैं। इनमें जो खेल प्रदर्शित करता है उसे ''रामतिया'' या ''रमतियों'' कहते हैं। इसलिए इनके खेल भी रामतियों अथवा रमतियों के खेल कहलायें।[8] ये नाट्य सरलता, सरसता एंव आडम्बरहीनता से सम्पूर्ण भरे होते है और उन्हें जनसमुदाय द्वारा मनोरंजन हेतू जन साधारण के लिए ही रचा जाता है।

बीकानेर की 'रम्मत' शब्द का मूल अर्थ 'रमने' या खेलने से रहा होगा ऐसा प्रतीत होता है। इन 'रम्मतों' का विकास देवी–देवताओं तथा अन्य धार्मिक चरित नायकों की पूजा–अर्चना करने से हुआ। पहले रम्मतें प्रेरक स्वांग के रूप में भी विकसित हुई, परन्तु कुछ समय पश्चात् केवल ऐतिहासिक चरित्र ही रम्मतों के विषय बने। रम्मत में सर्वप्रथम देवी–देवताओं का आहवान करते हैं और बाद में सामूहिक गान होता है जिसमें टेर भी होती है। रम्मत में काव्य, नृत्य और अभिनय को अच्छेव सामंजस्य के साथ प्रस्तुत किया जाता है।

गवरी

राजस्थान में लोकानुरंजन के मुख्यतया तीन रूप रहे हैं – ख्याल, स्वांग तथा लीलाएं। सार्वजनिक एंव सार्ववर्णिक कलाओं के रूप में इनका प्रणयन सर्वजनहिताय तथा सर्वजन सुखाय रहा है। अनुरंजन के ये रूप किसी वर्ग, वर्ण और धर्म विशेष की धरोहर ने होकर सभी वर्गो, वर्णों एंव धर्मों को अपने में आत्मसात् किये होते हैं। इनमें लीलाओं का सर्वाधिक चलन रहा है। इनका का मुख्य उद्देश्य जनजीवन की धार्मिक आस्थाओं को सबल प्रदान कर दर्शकों एंव प्रदर्शकों में अभिनव आनन्द की सृष्टि करना होता है। लीलाओं में गवरी नोकनाट्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण रहा है।[8]

फड़

राजस्थान में फड़ बांचने की परम्पराएं 500 वर्ष पुरानी हे। इन फड़ों को भोपो के द्वारा खेला जाता है। शाहपुर (भीलवाड़ा) में यह लोककला फड़ के चित्रकारों की अनोखी देन है। यह फड़ परम्परा आज केवल राजस्थान के ग्रामीण परिववेश मे ंन रहकर अन्य देशों तथा अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में भी अपनी पहचान बना

चुकी है। श्री लाल जोशी भीलवाड़ा के राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त सिद्ध हस्त शिल्प हस्तकार है। इन्होंने फड़ को विश्व के अनेक देशों में लोकप्रिय बनाया है। फड़ों में महाराणा प्रताप की जीवनी तथा कुमार संभव नाटकों को चित्रों में उतारा गया है। राजस्थान की कला संस्कृति में अनेक चित्रों जैसे – होली, दीवाली, गणगौर और अन्य तीज त्यौहार, मेलों–खेलों को चित्रित किया जाता है।[9]

नौंटकी

नौटंकी नामक खेल का प्रदर्शन भरतपुर, धौलपुर, करौली, अलवर, गंगापुर सवाई माधोपुर क्षेत्र में बहुधा लोकप्रिय है। नौंटकी के खेल विशेषकर मेलों, उत्सवों, त्यौहरों एंव शादियों के अवसरों पर होते हैं। भरतपुर–धौलपुर क्षेत्र मे नत्थेराम की मण्डली नौंटकी के खेल के लिए प्रसिद्ध है। इन क्षेत्रों में हाथरस शैली की नौंटकी अत्यधिक प्रसिद्ध है। नौंटकी एक पुरानी ख्याल शैली है। इस शैली में मुख्यतया नक्कारे का प्रयोग होता है, लेकिन उसके साथ–साथ सारंगी, ढोलक, शहनाई, डपली, हारमोनियम व चिकारा आदि वाद्य यन्त्र भी बजाये जाते हैं।[10]

डॉ. श्याम परमार नौंटकी, स्वांग या भगत इन तीनों को एक ही वस्तु मानते हैं, किन्तु उनके मत से स्वांग प्राचीन लोक–नाट्य है, भगत मध्यकाल की वस्तु है और नौंटकी में प्राचीनता के साथ रीतिकालीन ऐहिक प्रवृतियों का सम्मिश्रण है।

तमाशा

तमाशा भारत में महाराष्ट्र राज्य की लोक विधा से सम्बन्धित लोकनाट्य है। राजस्थान में तमाशा जयपुर शहर में बहुत लोकप्रिय एंव प्रचलित लोकनाट्य है। जयपुर में इस लोकविधा की परम्परा का आरम्भ जयपुर नरेश प्रताप सिंह द्वारा आरम्भ किया गया। लगभग 250 वर्ष पुरानी यह लोकनाट्य शैली जयपुर ख्याल और ध्रुपद गायकी का मिश्रित स्वरूप है। इसके प्रर्वतक पं. बंशीधर भट्ट है। यह परम्परा जयपुरी रंगत के ख्यालों के लिए अधिक प्रसिद्ध है। इस कला को जयपुर राजघराने का पर्याप्त सरंक्षण प्राप्त हुआ है। इसमें काव्यमय संवादों को राग–रागनियों में बांधकर सुनाया जाता है।[11]

13वीं शताब्दी से 16वीं शताब्दी तक संत ज्ञानेश्वर, नामदेव, तुकाराम, रामदास आदि काव्य में भारूड़ दशावतार, पवाड़े, बहुरूपी, ललित आदि सभी पर आरूड लिखे हैं परन्तु तमाशा पर एक भी रचना नहीं है। केवल उनके काव्य में तमाशा शब्द एक उल्लेख मात्र मिलता है। ''दुनिया से बड़ा–बड़ा तमाशा। बड़े–बड़े हुन्नर लागे।'' 17वीं शताब्दी से शिवाजी महाराजा के कवि भूषण ने शहिरी काव्य लिखकर उनका कीर्ति–गायन किया । उस समय भी तमाशा के अस्तित्व का उल्लेख नहीं है।[12]

भवाई

भवाई नाट्य प्रमुख रूप से गुजरात और गौण रूप से राजस्थान की लोकपरक नाट्य शैली है। इन दोनों शैलियों के आद्य उन्नायकों के सम्बन्ध में गुजरात और राजस्थान की धारणांए अलग–अलग हैं। भवाई नाट्य का प्रर्वतक ऊझा गांव के हेमाला पटेल के पुरोहित असाईत ठाकुर को माना जाता है। इनका जन्म

14वीं शताब्दी में एक औदित्य ब्राह्मण के घर में हुआ। असाइत को बचपन से ही कथा एंव गीत गाने का बहुत शौक था और इनको बहुत प्रसिद्धि भी मिली।[13]

राजस्थानी भवाई

राजस्थान में भवाई प्रायः स्वंय को रावल भवाई कहते हैं। इसका कारण यह है कि रावल शाखा के चारणा अपनी साहित्यिक रचनाओं के लिए प्रख्यात है। 'बीका जी' और 'बाघ जी' वेश रावलों की ही पुरानी कृतियां हैं। भवाईयों के बारे में आम राय है कि इनके नाट्य रूपों का स्तर भड़ैतों की नकलों से अधिक परिष्कृत नहीं होत। 'भांडभडैती' की तरह इन्हें 'भवाई भांड़' आम बोलचाल में कहा भी जाता है। यह भी सच है कि भवाई अपने खेलों में इतने मुक्त हैं कि इनकी स्त्रियों को इनके खेल देखना वर्जित है। इसका कारण यह भी है कि घरों की स्त्रियों के समक्ष न होने से पुरूषों को अपने अभिनय मे ंपूर्ण स्वतन्त्रा रहती है।

राजस्थान के भवाई नाट्य में ढोलक बहुत महत्वपूर्ण होता है। ढोलक पर बजाये जाने वाले टुकड़े और पसन नृत्य की चाल से विशिष्टतय सम्बन्धित होते हैं। दोनों की मिली जुली गम्मत में सम का बराबर ध्यान रखा जाता है।

स्वांग

(बहुरूपिया कला) राजस्थान में इस कला की परम्परा 13–14वीं शताब्दी से प्रचलित मानी जाती है। यह ऐसी लोक विधा होती है, जिसे एक ही चरित्र सम्पन्न करता है। इसमें एक व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के रूप को धारण करके उसका प्रदर्शन करता है। स्वांग रचने वाले को बहुरूपिया भी कहते हैं। यही लोक परम्परा स्वांग कहलाती है। इस लोक विधा का प्रदर्शन त्यौहार, उत्सवों तथा विशिष्ट अवसरों पर राजस्थान में विभिन्न जातियों के द्वारा किया जाता है। स्वांग करने वाले चरित्र को किसी विशेष मंच की आवश्यकता नहीं होती। इसका प्रदर्शन किसी भी खुले मैदान, चौराहे, गांव की गली आदि पर हो सकता है। भांड बहरूपिये स्वांग लाने में बड़े निष्णात होते हैं। ये अपनी नकल करने की कला में बड़े निपुण होते हैं और गांव के धनी लोगों की नकल उतारते हैं। स्वांग परम्परा के सम्बन्ध में कहा जाता है कि मय–गुर्जरी के क्षेत्र में बहुरूपियों के स्वांग अभिनय की परम्परा को रास–नाट्यों की परम्परा के समकालीन माना जाता है। यह नाट्य हास्य प्रधान माना जाता है। स्वांग का अभिनय करने वाला चरित्र विभिन्न प्रकार की वेश–भूषाओं को पहनकर हास्य सवांदो एंव गीतों को गाकर जन–समुदाय का मनोरंजन करता है। राजस्थान के मारवाड़ स्थान में रावल जाति के लोगों के द्वारा स्वांग प्रधान तमाशों का मंचन करने की परम्परा प्राचीन रही है। इनके स्वांगों में चाचा–बोहरा, सेठ–सेठानी, मियां–बीबी, अर्धनारेश्वर, जोगी–जोगन, कालबेलिया, मैना–गुजरी और बीकाजी के स्वांग प्रमुख हैं। ये लोग सब प्रकार का स्वांग भरते हैं, परन्तु चारण का नहीं, क्योंक रावल जाति चारणों की याचक है। इनके द्वारा नारद, सेठ, गड़िया, लोहारन, फकीर, बन्दर हनुमान, शंकर तथा कालबेलिया आदि स्वांगों को कुशल ढंग से प्रस्तुत किया है।[14]

रासलीला

यह राजस्थान ख्याल का एक लोकनाट्य प्रकार है जिसमें बहुधा श्री रामचन्द्र जी का सम्पूर्ण जीवन अंकित किया जाता है। इससे कृष्ण की क्रीड़ाओं का भी मान होता है। प्रारम्भ में जो रास तथा अभिनय को धारण करता है वही रासधारी कहलाता था। धीरे–धीरे सम्पूर्ण नाट्य का नाम ही रासधारी हो गया और खेल का नाम रासलीला। रासलीला नोकनाट्य का मंचन पौराणिक लोक कथाओं के आधार पर किया जाता है। रासधारी का अर्थ है वह पात्र जो रासलीला करता हो। लगभग 80–90 वर्षों पूर्व मोतीलाल जाट ने पहला नाटक रासलीला के लिए लिखा।[15]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि राजस्थान की लोकनाट्य परम्परा अत्यन्त समृद्धशाली है।

सन्दर्भ

1. सामर, देवीलाल, राजस्थानी लोकनाट्य, भारतीय लोककला मण्डल, उदयपुर, 1957, पृ.स.1
2. भल्ला, एल.आर., सामयिक राजस्थान, कुलदीप पब्लिकेशनस, जयपुर, 1085 2008, पृ.स.485
3. समर, देवी लाल, कठपुतली नाटक कला और समस्याएं, वैज्ञानिक अनुसंधान और सांस्कृतिक कार्य मंत्रालय, दिल्ली, पृ.स.4
4. उपाध्याय, विभाष, छायानट, उत्तरप्रदेश संगीत नाटक, अकादमी, लखनऊ, पृ.स.51
5. मधुर, शिवकुमार, भारत के लोकनाट्य, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1980, पृ.स.32
6. भानावत, महेद्रं, राजस्थान संगीत नाटक अकादमी, जोधपुर, पृ.स.65
7. मेहता, ज्ञानवती वैद, लोकनाट्यों में संगीत, विकास प्रकाशन बीकानेर, 2003 पृ.स.38
8. राजहंस, सुधा, लोकनाट्य, नये सन्दर्भ, राजस्थान संगीत नाटक अकादमी जोधपुर पृ.स.55
9. मेहता, ज्ञानावती बैद, लोकनाट्यों मे संगीत, विकास प्रकाशन, बीकानेर, 2003, पृ.स.39
10. राजहंस, सुधा, लोकनाट्य नये सन्दर्भ, विकास, प्रकाशन, बीकानेर, पृ.स.31
11. मेहता, ज्ञानवती बैद, लोकनाट्यों में संगीत, विकास प्रकाशन, बीकानेर 2003, पृ.स.39
12. राजहसं, सुधा, लोकनाट्य, नये सन्दर्भ, राजस्थान संगीत नाटक अकादमी, जोधपुर पृ.स.34
13. भटनागर, धर्मेन्द्र, वार्षिक सन्दर्भ ग्रन्थ, किरण प्रकाशन, जयपुर, 2004, पृ.स.641
14. राजहंस, सुधा, लोकनाट्य, नये सन्दर्भ, विकास प्रकाशन, राजस्थान संगी नाटक अकादमी, जोधपुर, पृ.सं.68
15. भटनागर, धर्मेन्द्र, वार्षिक सन्दर्भ ग्रन्थ, किरण प्रकाशन, जयपुर, 2004, पृ.स.641